



# International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519

IJSR 2018; 4(4): 152-159

© 2018 IJSR

www.anantaajournal.com

Received: 12-05-2018

Accepted: 18-06-2018

**Dr. JR Kashyap**

Associate Professor in Sanskrit  
Govt. PG College Seema (Rohru)  
Distt. Shimla Himachal Pradesh,  
India

## महाकवि भारवि वर्णित राजनैतिक विचारों की वर्तमान प्रासंगिकता: एक अनुशीलन

**Dr. JR Kashyap**

### प्रस्तावना

संस्कृत साहित्य के क्षेत्र में काव्य लेखन की परम्परा में अलंकृत शैली के आगमन एवं कलात्मकता के सन्निवेश से तत्कालीन काव्यों को विभिन्न शास्त्रों के ज्ञान-प्रकाशन का माध्यम बना दिया है। महाकवि भारवि की कृति ऐसे ही महाकाव्यों में अग्रगण्य है। उसमें राजनीति शास्त्र के अनेक उपयोगी सिद्धान्तों को प्रतिपादित किया गया है। काव्य के लिये चयनित विषय वस्तु का मूल स्रोत प्रसिद्ध चन्द्रवंशी राजाओं के पारिवारिक कलह की कथा भारवि को स्वकालिक राजनैतिक परिस्थितियों को अभिव्यक्त करने का पर्याप्त अवसर प्रदान करती है। कवि ने अपने राजनैतिक आदर्शों को दो रूपों में प्रदर्शित किया है। प्रथमतः दुर्योधन के प्रशासन के रूप में अपरतः युधिष्ठिर के द्वारा अपनायी गयी नीतियों के रूप में। जहाँ दुर्योधन की शासन व्यवस्था का वर्णन हमारा ध्यान राजा द्वारा राज्य के स्थिरीकरण एवं सुख समृद्धि हेतु किये जाने वाले उपायों की ओर आकृष्ट करता है वहीं युधिष्ठिर की शांति एवं दूरदर्शिता की नीतियाँ पराधीन राज्य की पुनः प्राप्ति हेतु शत्रु राजा के प्रति अपनाए जाने वाले दृष्टिकोण को अभिव्यक्त करती है। उक्त रूपों में ही भारवि कालीन राजनैतिक व्यवस्था का प्रतिबिम्ब निहित है जिसका विस्तृत विवरण निम्न प्रकारेण प्रस्तुत किया जा रहा है—

### क. राजनैतिक परिस्थितियाँ तथा आवश्यकताएँ

किरातार्जुनीयम में उपलब्ध होने वाले आरम्भिक वर्णनों में ही हम भिन्न-भिन्न अवस्थाओं में अवस्थित दो राजाओं को संघर्षरत पाते हैं जिससे यह ध्वनित होता है कि भारवि के काल में राजा लोग परस्पर लड़ते-झगड़ते रहते थे तथा एक दूसरे के राज्य को छलपूर्वक अपहृत करने में भी संकाच नहीं करते थे। यहाँ तक कि एक ही राज परिवार के भूपति अपने सम्बन्धों को भी दृष्टि से ओझल करते हुए अपने स्वार्थ हेतु कपटपूर्ण नीतियाँ अपना कर राज्य को हथियाने का प्रयास करते थे। राजनैतिक अशान्ति की उक्त सूचना के साथ-साथ इस बात के भी पर्याप्त प्रमाण मिलते हैं कि तत्कालीन शासन प्रबन्ध सुव्यवस्थित एवं सुयोग्य था। ऐसा प्रतीत हाता है कि इस काल में भी राजतंत्रात्मक शासन प्रणाली ही मुख्यतः लोकप्रिय थी जिसमें राजा ही राज्य का प्रमुख अधिकारी एवं सत्ता की सर्वोच्च शक्ति माना जाता था। सत्ताधारी पक्ष का प्रतिनिधित्व दुर्योधन द्वारा कराया गया है जिसकी शासन व्यवस्था से ऐसा भासित होता है कि राजा बड़ी कुशलता से राज्य का संचालन करता था। सर्वसाधन सम्पन्न होते हुए भी वह शत्रुओं की ओर से उदासीन न रहकर नवाधिगत राज्य का नीतिपूर्वक पालन करता था।<sup>1</sup> शत्रुओं के यश को आच्छादित करने के उद्देश्य से वह निरन्तर गुण सम्पत्ति को अर्जित करता रहता था।<sup>2</sup> सबसे उल्लेखनीय बात यह थी कि शासन चलाने के लिये मनु प्रभृति प्राचीन बहुश्रुत राजनीतिज्ञों द्वारा निर्दिष्ट सिद्धान्तों को सर्वथा ग्राह्य एवं प्रामाणिक माना जाता था।<sup>3</sup> प्रजा के हितों का पूरा ध्यान रखा जाता था तथा उसकी अभ्युदयशीलता में प्रशासन सदैव कृतकार्य रहता था। सिंचाई के व्यापक प्रबन्धों से कृषकों के लिये कृषि कार्य को सुकर बनाया जाता था।<sup>4</sup> राष्ट्र रक्षा एवं सामरिक सम्भावनाओं जैसे महत्त्वपूर्ण विषयों को गम्भीरता से लिया जाता था तथा ऐसी परिस्थितियों का सामना करने के लिये जो सेना गठित की जाती थी उसके सैनिक दुर्बल, कायर एवं अनुशासनहीन न होकर बलवान्, यशस्वी, गर्वयुक्त तथा निःस्वार्थ एवं स्वामी भक्ति जैसी उदात्त विशेषताओं से मण्डित थे। इन वीर सैनिकों को उनकी उत्कृष्ट सेवाओं के लिये समय-समय पर पारितोषिकादि प्रदान करके प्रोत्साहित किया जाता था और वे प्राणों की बाजी लगाकर भी राजा के हित में कार्य करने को तत्पर रहते थे।<sup>5</sup> इसके अतिरिक्त भारवि कालीन उस संघर्षशील युग में गुप्तचरों का विशेष महत्त्व था। जहाँ सत्ताधारी पक्ष अपने प्रतिद्वन्द्वी राजाओं की गतिविधियों को तथा अपने राज्य में प्रजा तथा मंत्रीवर्ग के मनोभावों को प्रच्छन्न रूप से ज्ञात करने के लिये अत्यन्त विश्वसनीय एवं सच्चरित्र गुप्तचरों को नियुक्त

### Correspondence

**Dr. JR Kashyap**

Associate Professor in Sanskrit  
Govt. PG College Seema (Rohru)  
Distt. Shimla Himachal Pradesh,  
India

करता था<sup>6</sup> वहीं दूसरी ओर राज्यच्युत भूपति वृन्द भी शत्रु राजा की आन्तरिक दुर्बलताओं के अन्वेषण हेतु गुप्तचरों को नियुक्त करके अपनी भावी योजनाओं को निश्चित करते थे।<sup>7</sup> राजा का इतना अधिक प्रभाव था कि कोई भी उसके प्रतिकूल चलने का साहस नहीं कर सकता था। उसे किसी के प्रति क्रुद्ध होने की आवश्यकता नहीं पड़ती थी। अधीनस्थ नृपवर्ग उसके गुणों पर मुग्ध होकर उसकी आज्ञा को श्रद्धा भाव से शिरोधार्य करते थे।<sup>8</sup> प्राप्त प्रमाण प्रमाणित करते हैं कि तत्कालीन शासक कुशल प्रजापालनपद्धति एवं स्वच्छ प्रशासन के बल पर ही समुद्र पर्यन्त शासन करने में सफल हो पाता था।<sup>9</sup>

भारवि कालीन राजनीति के द्वितीय प्रतिनिधि युधिष्ठिर हैं जो कि एक निर्वासित राजा का प्रतिनिधित्व करते हैं। “द्विषां विधाताय विधातुमिच्छतो”<sup>10</sup> कथन जहाँ एक ओर शत्रु के प्रति उनकी उदासीनता के निषेधक है वहीं दूसरी ओर इस बात की भी पुष्टि करता है कि वे सर्वथा सचेत भाव से शत्रुविध्वंसक उपायों का चिन्तन कर रहे हैं और गुप्तचर के रूप में एक वनेचर को शत्रु राज्य में उसकी आन्तरिक बातों के ज्ञानार्थ प्रेषित करना उनके आगामी कृत्य का उद्बोधक है।<sup>11</sup> गुप्तचर के माध्यम से ज्ञात शत्रु-विषयक सूचनाएं ही युधिष्ठिर की भावी योजनाओं की पृष्ठभूमि तैयार करती है। वनेचर द्वारा समुद्र पर्यन्त शासन करने वाले शत्रु की उन्नतावस्था का वर्णन युधिष्ठिर के लिये असमंजस एवं दुविधापूर्ण परिस्थितियों का उत्पादक सिद्ध होता है तथा समृद्ध, सशक्त एवं सर्वसाधन सम्पन्न शत्रु के प्रति किसी भी प्रकार की अग्रिम कार्यवाही करने से पहले इस विषय पर गम्भीरतापूर्वक विचार विमर्श करने के लिये विवश कर देता है। इन सन्देहास्पद परिस्थितियों में हम भारविकालीन राजनीति के क्षितिज पर दो प्रकार की विचारधारा को विकसित होते हुए देख सकते हैं। इन में से एक तो क्षिप्रकारिता एवं अधीरता का विकास करती हुई केवल शक्ति पर अन्धविश्वास करके शत्रु के प्रति अविलम्ब बल प्रयोग के पक्ष में थी जबकि दूसरी धैर्य और दूरदर्शिता से समन्वित थी। पहली नीति के प्रतिनिधि भाव भीमसेन और द्रौपदी द्वारा युधिष्ठिर को दिये परामर्श से प्राप्त होते हैं। दूसरी नीति का प्रतिनिधित्व युधिष्ठिर स्वयं करते हैं। द्रौपदी और भीम दोनों ही शत्रुओं के साथ युधिष्ठिर द्वारा विहित त्रयोदशवर्षीय वनवास रूपी सन्धि को भंग करने के पक्ष में हैं। द्रौपदी इसलिये कालावधि के परिष्करण के विरुद्ध हैं क्योंकि उसकी सम्मति में नीचता पर उतारू दुर्योधन जैसे जालसाज शत्रु के विरुद्ध किसी न किसी बहाने से सन्धि तोड़ने में कोई दोष नहीं है—

**न समयपरिरक्षणं क्षमम् ते निकृतिपरेषु भूरिधाम्नः ।  
अरिषु हि विजयार्थिनः क्षितीशाः विदधति सोपधि सन्धिदूषणानि ॥<sup>12</sup>**

दूसरी ओर भीम के सन्धि विरुद्ध होने का कारण यह है कि वह शत्रु पक्ष को अद्वितीय पराक्रम के स्वामी पाण्डवों की तुलना में अकिंचन मानता है—

**द्विरदानिव दिग्विभाविताश्चतुरस्तोयनिधीनिवायतः ।  
प्रसहेत रणे तवानुजान् द्विषतां कः शतमन्युतेजसः ॥<sup>13</sup>**

भीम इसलिये भी सन्धि पालन का विरोध करता है क्योंकि उसका मानना है कि चिर काल तक राज्य लक्ष्मी का उपभोग करने के पश्चात् कुटिल दुर्योधन बिना संघर्ष राज्य वापस नहीं लौटाएगा।

**अथ चेदवधिः प्रतीक्ष्यते कथमाविष्कृतजिह्मवृत्तिना ।  
धृतराष्ट्रसुतेन सुत्यजाश्चिरमास्वाद्य नरेन्द्र सम्पदः ॥<sup>14</sup>**

ऐसी विकट परिस्थितियों में युधिष्ठिर अग्रिम कार्यवाही करने से पहले बड़ी सन्तुलित दृष्टि अपनाते हैं। भीम एवं द्रौपदी के उत्तेजक

तथा धैर्यध्वंसक कथन उनके मानसिक सन्तुलन को विकृत नहीं कर पाते हैं। नीति शास्त्रीय मूल्यों के प्रति आदर भाव रखने वाले युधिष्ठिर शीघ्रता में दिये गये किसी भी ऐसे अपरिपक्व सुझाव का समर्थन नहीं करते जिससे उनके द्वारा शत्रुओं को दिये गये वचन का उल्लंघन हो। इसके अतिरिक्त उपस्थित सन्दिग्ध परिस्थितियों में युधिष्ठिर द्वारा उद्घाटित निर्णायक तर्क एवं युक्तियाँ उन विचारणीय विषयों की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट करती हैं जो किसी भी गम्भीर कार्य में प्रवृत्त होने से पूर्व आवश्यक होते हैं। उनकी सम्मति में उलझे हुये गम्भीर विषय पर कोई भी त्वरित निर्णय लेने से पहले उसके सभी पक्षों पर गहनतापूर्वक विचार-विमर्श करके ही कोई अन्तिम निर्णय लिया जा सकता है क्योंकि अविचारपूर्वक किये गये कार्य का परिणाम दुःखद होता है तथा सम्पत्तियाँ केवल गुणी व्यक्ति को ही स्वीकार करती हैं।<sup>15</sup> जहाँ अविचारपूर्वक विहित कार्य क्लेशजनक होते हैं वहीं विवेकपूर्वक सम्पादित कार्यों का परिणाम सुखद एवं आरामदायक होता है। इसी बात की ओर संकेत करते हुए युधिष्ठिर का कहना है कि जिस प्रकार किसान ग्रीष्म ऋतु में विविध प्रकार के बीजों को बोकर समय-समय पर उसे सिंचित करके सर्दियों में अच्छी फसल काटकर प्रसन्न होता है उसी प्रकार जो राजा सन्धि विग्रह आदि कार्यों के बीज का संरक्षण करते हुए विचार रूपी जल से उसका सिंचन करता है वह हमेशा सफलता रूपी फसल पाकर सुखी एवं प्रसन्न रह सकता है।<sup>16</sup> जहाँ एक ओर भीम शत्रु प्रतिकार के लिये आत्म पौरुष एवं पराक्रम को ही एकमात्र साधन मानता है<sup>17</sup> वहीं दूसरी ओर कुशल राजनीतिज्ञ युधिष्ठिर पराक्रमी होने के साथ-साथ राजा का न्याय पथावलम्बी होना भी अनिवार्य मानते हैं। उनके विचारों में बलाधिक्य से गर्वित न होकर नीतिपूर्वक समस्या के पक्ष-विपक्ष पर सम्यग् विचार करके उठाया गया कदम श्रेष्ठ होता है।<sup>18</sup> इसी प्रकार जहाँ द्रौपदी वर्तमान परिस्थितियों में क्रोध की अपरिहार्यता स्वीकार करती है<sup>19</sup> वहीं युधिष्ठिर क्रोध के आवेश में अन्धे होकर कोई भी क्लेश प्रद कार्य करने के पक्ष में नहीं है।<sup>20</sup> अभ्युदय प्राप्ति हेतु क्रोध को नियंत्रित करने की आवश्यकता पर बल देते हुए उनका मानना है कि जिस प्रकार सूर्य रात्रि में जमें हुये अन्धकार को अपनी किरणों से नाश करने के पश्चात् ही उदय होता है उसी प्रकार उन्नति चाहने वाले लोगों को सर्वप्रथम उन्नति के मार्ग में बाधास्वरूप क्रोध रूपी अन्धकार का नाश करना चाहिए।<sup>21</sup> उनकी सम्मति में सामर्थ्यवान् होते हुए भी जो व्यक्ति क्रोध जनित मोह के आक्रमण का निवारण नहीं कर सकता उसकी सारी शक्तियाँ चन्द्रमा की कला की तरह नष्ट हो जाती हैं।<sup>22</sup> उनके विचारों में सूर्य के समान समय-समय पर कठोरता एवं मृदुता धारण करने वाला राजा ही प्रजा को वश में रखते हुए विश्व विजयी बन सकता है।<sup>23</sup> जहाँ एक ओर भीम अहर्निश उन्नति के पथ पर अग्रसर शत्रु के प्रति किसी भी प्रकार की उदासीनता प्रदर्शित करना नितान्त अनुचित एवं असंगत मानता है<sup>24</sup> वहीं दूसरी ओर अपने शत्रु दुर्योधन के विषय में युधिष्ठिर का प्राक्कलन उनकी दूरदर्शिता को प्रकट करता है। उनके विचारों में शत्रु के साथ त्रयोदश वार्षिकी समय मर्यादा का उल्लंघन करके असमय में ही युद्ध की घोषणा करना उचित नहीं है क्योंकि ऐसा करने पर यादव प्रभृति भूपतिवृन्द, पाण्डवों को नीति पथ से विचलित हुआ समझकर, उनके विरुद्ध होकर, दुर्योधन के सहायक बन सकते हैं और ऐसी स्थिति में उसे पराजित करना कठिन ही नहीं अपितु असम्भव हो सकता है।<sup>25</sup> अतः युधिष्ठिर किसी प्रकार के विग्रह-विधान से पहले उचित समय की प्रतिक्षा करना न्याय संगत मानते हैं। उनका मत है कि उग्र एवं अहंकारी राजा की समृद्धि कालान्तर में बुराइयों को उत्पन्न करने वाली होती है। इसी बात को स्पष्ट करते हुए वे कहते हैं कि बुद्धिमान राजा को अत्याचारी या उद्धत शत्रु की बढ़ती हुई सम्पत्ति की उपेक्षा करनी चाहिए। ऐसे राजा को कभी भी पराजित किया जा सकता है।<sup>26</sup> धर्म राज आशा करते हैं कि शीघ्र ही दुर्योधन अपनी दुष्टता एवं दुश्चारों के कारण बाह्य एवं आन्तरिक झगड़ों से दुर्बल पड़ जाएगा। अतएव उनका

विचार है कि अविनयी दुर्योधन के अपमानों से तिरस्कृत होकर यादव तथा अन्य राजा उसके विरोधी बनकर पाण्डवों का पक्ष लेंगे और शत्रु को ध्वस्त करने का यही अवसर उचित होगा।<sup>27</sup> इन विवादास्पद परिस्थितियों में महर्षि व्यास द्वारा युधिष्ठिर को दिये गये परामर्श हमारा ध्यान अच्छे मन्त्री या सलाहकार की उपयोगिता की ओर आकृष्ट करते हैं। उनका कहना है कि युद्धनीति राजा के लिये एक महत्त्वपूर्ण अंग है। उनकी सम्मति में खोये हुए राज्य की पुनः प्राप्ति पराक्रम द्वारा ही सम्भव है किन्तु वे यहाँ पर युधिष्ठिर को इस बात से भी आगाह करवाते हैं कि वर्तमान में शत्रुपक्ष पराक्रम, शस्त्रास्त्र एवं सेना के मामले में पाण्डवों से अधिक शक्तिशाली है, अतः पाण्डवों को ऐसे प्रयास करना आवश्यक है जिनकी सहायता से उपर्युक्त साधनों में श्रेष्ठता प्राप्त की जा सके।<sup>28</sup> व्यास प्रदत्त उक्त परामर्श पर पाण्डवों को ऐसे साधनों का पता लगाना अनिवार्य हो जाता है जिनसे अपनी शक्ति में वृद्धि की जा सके। युद्ध भूमि में विजय श्री की प्राप्ति शस्त्रों एवं सेना की उन्नत व्यवस्था पर निर्भर होती है। शत्रुपक्षीय भीष्म, द्रोण और कर्ण जैसे विश्वविख्यात योद्धाओं का विनाश तभी किया जा सकता है जब व्यास निर्दिष्ट तपस्या के द्वारा अर्जुन विजय प्रदायक दिव्यास्त्रों को प्राप्त करेगा।<sup>29</sup> व्यास की उत्तम सूझबूझ एवं दूरदर्शिता पाण्डवों के विवाद को समाप्त करते हुए उनके लिये एक निश्चित मार्ग का सृजन करती है जिसका अनुसरण करते हुए वे अपने उद्देश्य में सफल हो सकते हैं।

इस प्रकार उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर कहा जा सकता है कि भारवि युगीन राजनीति में जहाँ एक ओर विजित राज्य के संरक्षण हेतु प्राचीन राजनीति शास्त्र वेत्ताओं द्वारा निर्दिष्ट सिद्धान्तों का प्रयत्नपूर्वक पालन किया जाता था वहीं दूसरी ओर अपहृत राज्य के पुनः अधिग्रहण के लिये शत्रु के प्रति युद्ध जैसी महत्त्वपूर्ण कार्यवाही के विषय में किसी प्रकार की असावधानी स्वीकार्य नहीं थी। शत्रु के बलाबल पर गम्भीरतापूर्वक सम्यग्विचार करके ही कोई निर्णय लिया जाता था। इसके साथ ही यह बात भी स्पष्टरूपेण प्रमाणित होती है कि तत्कालीन नृपतिवर्ग परिस्थितियों एवं आवश्यकताओं के अनुरूप पूर्ण शास्त्रीय दृष्टि से नीति एवं कार्य प्रणाली निर्धारित करने में सिद्धहस्त थे।

### ख. राजा और प्रजा

राजतंत्रात्मक शासन में राजा ही सर्वोच्च होता है किन्तु राज्य का सर्वप्रमुख एवं महत्त्वपूर्ण अंग होने पर भी पाश्चात्य देशों के शासकों की भाँति भारतीय राजा कभी भी स्वच्छन्दता के साथ प्रजा पर निरंकुश शासन करने का अधिकारी नहीं रहा। यदि राजा देश एवं अपनी प्रजा का प्राण रहा है तो प्रजा भी उसकी चेतना रही है। प्रजा को सन्तुष्ट रखना तथा सुचारु रूप से पालन कर उसे सुखी बनाना ही राजा का सर्वप्रमुख उद्देश्य रहा है।<sup>30</sup> वैदिक काल से ही प्रजा पालन को राजा के सर्वप्रमुख कर्तव्य के रूप में स्वीकृत किया गया है। ऋग्वेद के अनुसार प्रजापालन राजा का प्रमुख कर्तव्य है तथा उसे चाहिए कि वह प्रजा के लिये अन्न और धन का समुचित प्रबन्ध करे।<sup>31</sup> राजा और प्रजा को अन्योन्याश्रित मानते हुए यजुर्वेद का कथन है कि राजा प्रजा का हित साधन करे और प्रजा भी राजा की आज्ञा माने।<sup>32</sup> सुख प्राप्ति के लिये राजा और प्रजा पारस्परिक विरोध को छोड़ दे।<sup>33</sup> पश्चाद्द्वर्ती राजनीति विशारदों ने भी उक्त धारणाओं को यथा रूप में स्वीकार किया है। मनु की सम्मति में अत्याचारियों के भय से डरी हुई प्रजा की रक्षा के लिये इन्द्र, वायु, यम, सूर्य, अग्नि, चन्द्रमा तथा कुबेर के अंश से राजा का निर्माण किया गया है अतएव अभिषिक्त राजा का कर्तव्य है कि न्यायपूर्वक प्रजा की रक्षा करे।<sup>34</sup> आचार्य शुक्र के मतानुसार राजा का कर्तव्य है कि वह पिता के समान प्रजा को गुण सम्पन्न करे, माता के समान पुष्ट बनाए, गुरु के समान हितोपदेश दे, भ्राता के समान अपने भाग के रूप में कर ग्रहण करे, बन्धु के समान रहस्य की रक्षा करे तथा कुबेर के समान धन दें एवं दान, मान और सत्कार से प्रजा को प्रसन्न रखें।<sup>35</sup> इसी

प्रकार महाभारत वर्णित राजा-प्रजा विषयक मन्तव्य भी ध्यातव्य है। तदनुसार प्रजा जनों को राजा के पद के लिये योग्य व्यक्ति का चुनाव करना चाहिए। राजा और प्रजा पारस्परिक सहयोग से राष्ट्र को उन्नत बना सकते हैं। राजा ही वह तत्त्व है जिसके कारण प्रजाजन एक दूसरे को कष्ट नहीं पहुँचाते, दुर्बल स्त्रियों का सतीत्व नहीं लूट पाते, पूज्य जनों के प्रति दुराचरण नहीं कर पाते, अकाल मृत्यु, दस्यु-उपद्रव, व्यभिचार आदि कष्टों से बचे रहते हैं। भय, उद्विग्नता, मूर्च्छा आदि का अभाव हो जाता है तथा प्रजा के अस्तित्व पर चिन्ह नहीं लगता है। प्रजा जनों का कर्तव्य है कि वे राजा का आदर-सत्कार, हित एवं पूजन करें क्योंकि वह अग्नि, सूर्य, कुबेर तथा यम का रूप धारण करता है। उसकी निन्दा तथा उसके प्रतिकूल आचरण न करें एवं उसी का आश्रय लें।<sup>36</sup> इस प्रकार महाभारत ने भी राजा और प्रजा को एक दूसरे का पूरक माना है।

किरातार्जुनीयम में भी राष्ट्र की खुशहाली के लिये राजा और प्रजा के सहभाग को प्रधानता दी गयी है। प्रजा ही राजा की शक्ति होती है। जब तक प्रजा अपने राजा के प्रति अनुरक्त रहती है तथा उसकी प्रजा पालन पद्धति एवं नीति निर्धारण से सन्तुष्ट रहती है तब तक कोई भी बाह्य विपक्षी शक्ति उसे किसी प्रकार की क्षति पहुँचाने का दुस्साहस नहीं कर सकती। किरात के अन्तर्गत उपलब्ध होने वाले राजा-प्रजा विषयक वर्णनों से संकेतित होता है कि भारविकालीन शासक उक्त तथ्य से परिचित होते हुए ही नवाधिगत राज्य के चिर स्थायित्व हेतु प्रजानुरंजन को ही प्राथमिकता देता था और नीतिपूर्वक ही तदर्थ प्रवृत्त होता था।<sup>37</sup> अपनी शक्तियों का दुरुपयोग न करके तथा किसी भी प्रकार की निरंकुशता एवं धृष्टता प्रदर्शित न करते हुए प्रजा के प्रति समर्पित भाव रख कर उसके अनुरंजन में सतत तत्पर रहता था। मनु निर्दिष्ट आदर्श राजा के कर्तव्यों का अनुसरण करने का प्रयास करते हुए वह अपने नौकरों, मित्रों एवं अन्य रिश्तेदारों को प्रसन्न करने के लिये सावधान रहता था तथा उनके साथ विनम्रता का व्यवहार करके उनकी स्थिर विश्वसनीयता को प्राप्त करने में समर्थ होता था।<sup>38</sup> तत्कालीन शासक अपने सुख एवं स्थैर्य को प्रजा की सुख समृद्धि में ही निहित मानता था। फलस्वरूप निरन्तर प्रजा हित के उपायों का विधान करता रहता था।

कृषक निश्चित रूपेण किसी भी राष्ट्र की रीढ़ की हड्डी होते हैं। वे राष्ट्र के विकास में उल्लेखनीय भूमिका निभाते हैं। अपनी कड़ी मेहनत से वे अन्नादि का उत्पादन करके सम्पूर्ण राष्ट्र की खाद्य आवश्यकताओं को पूरा करते हैं। प्रजा के इस वर्ग के प्रति प्रशासन बड़ा ही सकारात्मक दृष्टिकोण अपनाता था। कृषकों के लिये सिंचाई की व्यापक व्यवस्था करवायी गई थी जिसका सदुपयोग करके वे सुखपूर्वक खेती करते हुए धन-धान्य सम्पन्न होकर आनन्दमय जीवन व्यतीत करते थे तथा दुर्भिक्ष सदृश अप्रिय एवं विषम परिस्थितियों का भय उन्हें आक्रान्त नहीं करता था।<sup>39</sup> कृषकों के साथ-साथ प्रशासनिक कार्यों में अनन्य भाव से संलग्न कर्मचारियों के प्रति भी उदासीन दृष्टिकोण नहीं अपनाया जाता था। राजकार्यों में नियुक्त कर्मचारियों द्वारा सफलतापूर्वक कार्य सम्पादित कर लेने पर उन्हें सम्मानित किया जाता था तथा उन्हें इतना पारिश्रमिक दिया जाता था कि वे राजा की कृतज्ञता पर मुग्ध होकर किसी भी प्रकार के बाह्य प्रलोभन की उपेक्षा करते हुए अपनी उत्तम सेवाएं सतत रूपेण निःस्वार्थ भाव से राष्ट्र विकास के लिये समर्पित करते थे।<sup>40</sup> इसी प्रकार लोक मर्यादा की स्थापना एवं समाज को सुव्यवस्थित बनाने के लिये जो दण्ड व्यवस्था अपनायी जाती थी वह पूर्णतया निष्पक्षता पर आधारित थी जिसके अन्तर्गत अपराधी मात्र को दण्डित किया जाता था चाहे वह राजा का आत्मीय होता था या शत्रु।<sup>41</sup> दण्डनीति की समुचित व्यवस्था राजा की शास्त्रज्ञता एवं शासकीय योग्यताओं की प्रकाशक होने के साथ-साथ राजा को इस दृष्टि से भी लाभ पहुँचाती थी कि प्रजा में किसी प्रकार का अनावश्यक भय एवं असन्तोष व्याप्त नहीं हो पाता था और वह सहज रूप से राजा के प्रति अनुरक्त रहती थी।

दण्डनीति की कुशलता के साथ-साथ राजनीति के सामाजिक उपायों के प्रयोग में भी भारवि युगीन राजा पर्याप्त दक्ष था। वह जिसके प्रति प्रसन्न होकर स्नेहपूर्वक बात करता था उसके सन्तोष के लिये कुछ न कुछ देता भी था। बिना गुण की परीक्षा किये किसी का विशेष सत्कार नहीं करता था बल्कि योग्यतानुसार ही सत्कार किया जाता था।<sup>142</sup> उसके भेद-कौशल पर यदि दृष्टिपात किया जाए तो कहा जा सकता है कि इसमें भी वह पूर्णतया सिद्धहस्त था। हमेशा सशक्त रहते हुए वह आत्मीय जनों को राजकार्यों में नियुक्त करके गुप्त रूप से उनके ऊपर दृष्टि रखता था। इतना होने पर भी बड़ी कुशलता से किसी पर यह बात प्रकट नहीं होने देता था।<sup>143</sup> भारवियुगीन शासक बड़ी कुशलता से पूर्ण शास्त्रीय दृष्टिकोण अपनाते हुए काम, क्रोध, लोभ, मोह, मात्सर्य एवं अहंकार आदि शत्रुओं को अपने अधीन रखकर रात और दिन के समय का सम्यग्विभाजन करके सतत रूप से प्रजा को अनुकूल बनाए रखने के लिये अपने शासकीय कर्तव्यों का भरपूर निर्वाह करता था।<sup>144</sup> लोक कल्याण के लिये जो-जो योजनाएं बनाई जाती थी वे इतनी गोपनीय होती थीं कि केवल कार्यान्वित होने पर ही वे जानी जा सकती थीं।<sup>145</sup> राजा के व्यक्तित्व में यह एक उल्लेखनीय वैशिष्ट्य था कि वह समदृष्टि रखते हुए निःस्वार्थ भाव से धर्म, अर्थ और काम नामक तीनों गुणों का सेवन करता था। कहने का तात्पर्य यह है कि जब वह धर्म करता था तो अर्थ और काम की भावना उसके मन में नहीं रहती थी, जब अर्थोपार्जन करता था तो धर्म और काम उसमें बाधक नहीं होते थे और जब काम में आसक्त रहता था तो धर्म और अर्थ उसके सहायक बनते थे।<sup>146</sup> इस प्रकार तीनों गुण उसके अभ्युदय में सहायक सिद्ध होते थे।

प्रजानुरंजन में पूर्ण तत्परता के साथ-साथ राजा का व्यक्तित्व धार्मिकता की भावना से अनुप्राणित था। पारलौकिक सिद्धि हेतु भी वह सजग रहते हुए राज्य संचालन का उत्तरदायित्व युवराज को सौंप कर सर्वथा निरलस भाव से पुरोहित की आज्ञा को शिरोधार्य करते हुए अग्नि देव को हव्यादि प्रदान करके देवताओं को प्रसन्न करता था।<sup>147</sup> अपने राजनीतिक जीवन में उपस्थित होने वाली विविध समस्याओं एवं दुविधापूर्ण परिस्थितियों के निराकरण के लिये विवेक पूर्वक कार्य करने को प्रमुखता देता था तथा संयोगवश मिलने वाली सफलता की अपेक्षा नीतिपूर्वक अर्जित सफलता को अधिक श्रेष्ठ मानता था।<sup>148</sup> शास्त्रों के प्रति राजा अनन्य श्रद्धा भाव रखता था तथा सन्दिग्ध परिस्थितियों में उसकी निर्णायक भूमिका को सादर स्वीकार करता था। इस बात की पुष्टि किरात के अन्तर्गत उपलब्ध होने वाले उस कथन से होती है जिसमें कहा गया है कि जिस प्रकार अन्धकार युक्त स्थान में दीपक सभी पदार्थों को आलोकित करता है उसी प्रकार सन्देह रूपी अन्धकार युक्त परिस्थितियों में एवं दुर्ज्ञेय नीतियों के कार्य पथ में परिश्रमपूर्वक अधीत नीति शास्त्र दीपक के समान विवेकी पुरुष को उचित मार्ग दर्शाता है।<sup>149</sup> इसी प्रकार प्रजा को अनुकूल बनाए रखने के लिये गुणवानों के प्रति सरलता तथा दुर्जनों के प्रति कुटिलता धारण करते हुए समय एवं परिस्थितियों के अनुसार कठोरता एवं मृदुता धारण करना उसे अभीष्ट था।<sup>150</sup> महापुरुषों द्वारा दिए गये उपदेशों में वह असीम श्रद्धा रखता था। श्रेष्ठ आचरण युक्त महानुभावों द्वारा अनुष्ठित मार्ग का अनुसरण करते हुए दैविक वैपरीत्य के कारण होने वाली अवनति को भी वह उन्नति ही मानता था।<sup>151</sup> उक्त धारणाएं निश्चय ही तत्कालीन शासक के अत्यन्त उदात्त गुणों से मण्डित व्यक्तित्व को अंकित करने में पूर्णतः सफल हुई हैं।

अन्ततः निष्कर्ष स्वरूप यही कहा जा सकता है कि भारवि के काल में राजा और प्रजा के सम्बन्ध बहुत ही मधुर थे। जहाँ राजा प्रजा को अपनी शक्ति एवं अपना सर्वस्व मानकर पूर्ण शासकीय योग्यताओं के द्वारा उसकी आराधना एवं अनुरंजन में संलग्न रहता था वहीं प्रजा भी अपने स्वामी की कुशलता एवं योग्यताओं में विश्वास करते हुए श्रद्धा भाव से इसके प्रति निष्ठावान् रह कर प्राण तक न्योछावर करने में संकोच नहीं करती थीं।

## ग. राज्य प्रशासन एवं अधिकारी

वेदों के साथ-साथ समस्त प्राचीन राजनीति विशारदों ने राज्य के विधिवत् संचालन के लिये राजा के सहयोगी मंत्रियों एवं अधिकारियों को नियुक्त करने पर विशेष बल दिया है। राजशास्त्र प्रणेताओं में अग्रगण्य आचार्य मनु की सम्मति में छोटे से छोटा कार्य भी अकेले सम्पादित करना असम्भव है राज्य की तो बात दूर है।<sup>152</sup> आचार्य शुक्र ने भी इन्हीं शब्दों में मनु के कथन का अनुमोदन किया है।<sup>153</sup> कौटिल्य के मतानुसार राज्य के पद भार को सहयोगियों के सहयोग से ही सफलतापूर्वक वहन किया जा सकता है। अकेला पहिया नहीं घूम सकता। इसीलिये राजा को मंत्रियों की नियुक्ति करनी चाहिए और उनके विचार सुनने चाहिए।<sup>154</sup> प्राचीन भारतीय चिन्तन धारा की सत्ता भारवि के काल में भी वर्तमान रही प्रतीत होती है। राजा और प्रजा के अतिरिक्त किरात में मंत्री, पुरोहित, गुप्तचर, दूत, सेनापति आदि अन्य राजनैतिक घटक राजा के सक्रिय सहयोगी के रूप में वर्णित किये गये हैं।

### 1. मन्त्री

प्रशासनिक कार्यों में राजा का हाथ बंटाने वालों में उसका मन्त्री सर्वप्रमुख होता है जिसके साथ बैठकर राजा अपने राज्य के क्षेमकारित्व के विषय में मन्त्रणाएं करता है। किस व्यक्ति को राजा अपना मन्त्री बनाए तथा उसमें कौन-कौन से गुण होने चाहिए एवं उसके क्या-क्या कार्य होते हैं आदि विषयों पर सभी राजनीति वेत्ताओं ने अपने पृथक-पृथक मत स्थापित किये हैं। ऋग्वेद के अनुसार मन्त्री के कार्य राष्ट्र के अन्दर प्रजा की उत्तम व्यवस्था करना,<sup>155</sup> राजा के विचारों से साम्य रखना<sup>156</sup> एवं अपने कार्यों से प्रजाजनों का प्रिय हो जाना है।<sup>157</sup> आचार्य मनु के अनुसार राजा अपनी सहायता के लिये सात या आठ मन्त्रियों को नियुक्त करे जो कुल क्रमागत, शास्त्रज्ञ, शस्त्र चलाने में कुशल, कुलीन एवं सुपरीक्षित हो। राजा मंत्रियों के साथ सन्धि-विग्रह आदि षड्गुण, दण्ड, कोश, धान्य का उत्पादन और राष्ट्र रक्षा आदि के विषय में मन्त्रणा करें, सभी मन्त्रियों के विचारों को जान कर उनसे अपना हित करें, ब्राह्मण मन्त्री के साथ षड्गुण सम्बन्धी मन्त्रणा करें, दूसरे गुण सम्पन्न मंत्रियों को धन-धान्य का संग्रह करने में लगाए तथा स्वभावतः भीरु मंत्रियों की नियुक्ति अन्तःपुर, पाकशाला और शयनकक्ष में करें।<sup>158</sup> महाभारत में भी मन्त्री विषयक मन्तव्य उपलब्ध होता है। तदनुसार शास्त्रज्ञ, दण्डनीतिज्ञ, विद्वान्, ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य क्रमशः मन्त्री बनने और मन्त्रणा देने के योग्य हैं।<sup>159</sup> धर्मज्ञ तथा कुलीन व्यक्ति ही मन्त्री बनकर राजा की रक्षा कर सकते हैं।<sup>160</sup> परम मित्र, मधुर भाषी, क्षमाशील, निन्दा रहित, शिष्टाचारी, बुद्धिमान, स्मृतिवान्, मर्यादापालक तथा किसी भी स्थिति में धर्म को न छोड़ने वाला व्यक्ति मन्त्री बनने की योग्यता रखता है।<sup>161</sup> आचार्य शुक्र के अनुसार नीति शास्त्र को जानने वाला व्यक्ति मन्त्री बनने के योग्य हैं उसका कर्तव्य है कि वह राजा को सन्धि-विग्रह तथा उपाय-चतुष्टय के प्रयाग के विषय में सुझाव दें।<sup>162</sup> इसी प्रकार आचार्य कौटिल्य ने अपने पूर्ववर्ती आचार्यों का मत प्रस्तुत करते हुए कहा है कि राजा के सुपरिचित सहपाठी अमात्य बनने के योग्य हैं। ऐसा व्यक्ति अमात्य हो सकता है जो सदैव राजा की रक्षा करने को तत्पर रहे, जो विद्या, बुद्धि, साहस आदि गुणों से युक्त हो।<sup>163</sup> किरातार्जुनीय में यद्यपि मन्त्री के अपेक्षित गुणों एवं योग्यताओं के विषय में विस्तृत वर्णन नहीं मिलता है तथापि एतद्विषयक उल्लेखों पर यदि दृष्टिपात किया जाए तो ज्ञात होता है कि तत्कालीन राजनैतिक क्षेत्र में मन्त्री का स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण था तथा उसे राजा की शोभा माना जाता था।<sup>164</sup> तदयुगीन मन्त्री अपने राजा के हित चिन्तन को ही अपना कर्तव्य मानता था। राजा की चिरस्थिरता एवं अखण्डता के लिये राजा और मन्त्री की वैचारिक तथा सैद्धान्तिक समता को अनिवार्य माना जाता था। जो मन्त्री अपने राजा को हितकारी मार्ग की ओर प्रेरित नहीं करता था उसे दुर्मन्त्री समझा जाता था तथा जो राजा मन्त्री द्वारा कही जाने वाली हितकारी बात की उपेक्षा करता था उसे निन्दनीय एवं कुत्सित कहा

जाता था। राजनैतिक क्षेत्र में यह धारणा दृढ़ता से बद्धमूल थी कि सम्पत्तियाँ उसी राजा का आश्रय ग्रहण करती हैं जिस राज्य में राजा और उसके मन्त्री के सम्बन्ध अच्छे एवम् सौहार्दपूर्ण हों "सदानुकुलेषु हि कुर्वते रतिम् नृपेष्वमात्येषु च सर्वसम्पदः"।<sup>65</sup> एक सच्चे एवं सत्य प्रदर्शक मन्त्री के अस्तित्व का सजीव उदाहरण उस उल्लेख में उपलब्ध होता है जब उन्नति के पथ पर निरन्तर अग्रसर होते हुए शत्रु के विरुद्ध अग्रिम कार्यवाही करने के विषय में युधिष्ठिर, द्रौपदी और भीम में विवाद चल रहा होता है। ऐसे समय में महर्षि व्यास अपनी दूरदर्शिता एवम् राजनैतिक कुशलता से शत्रु विषयक जिन रहस्यों को उद्घाटित करते हैं उनके आधार पर पाण्डव सभी विवादों से मुक्त होकर एक निश्चित मार्ग का अवलम्बन ग्रहण कर पाते हैं। महर्षि व्यास का मन्तव्य है कि दुष्ट मंत्रियों की राय पर चलने वाला राजा नष्ट हो जाता है। उनकी सम्मति में कर्णादि, दुर्योधन के अन्ध पक्षपाती बन कर पाण्डवों से अपनी शत्रुता साधने वाले हैं अतः ऐसे दुर्मन्त्रियों के परामर्श पर निर्भर रहने वाला दुर्योधन सिद्धि प्राप्त नहीं कर पाएगा।<sup>66</sup> इसी प्रकार महर्षि व्यास बल में अपने से अधिक शत्रुपक्ष के उन्मूलन एवम् छिने हुए राज्य की पुनः प्राप्ति के लिये सैनिक व्यवस्था को सशक्त बनाने का सार्थक एवं न्याय संगत परामर्श भी देते हैं।<sup>67</sup> उक्त विवरण के आधार पर कहा जा सकता है कि भारवि युगीन राजा को ऐसे दूरदर्शी एवं राजनीति कुशल मंत्रियों का सान्निध्य प्राप्त था जो विवादास्पद परिस्थितियों में भी अपने सूक्ष्म एवं गहन राजनैतिक वैशारद्य से निश्चित मार्ग का सृजन करने में दक्ष थे। दूसरी ओर केवल राजा की हों में हों मिलाने वाले तथा उसकी त्रुटिपूर्ण तथा अनैतिक बातों में भी चुप रहने वाले अत्यधिक बुद्धिमान मंत्रियों वाला राजा भी विनाश को प्राप्त हो जाता है। इसका उदाहरण दुर्योधन है।

## 2. पुरोहित

राजनैतिक क्षेत्र में वैदिक काल से ही पुरोहित का योगदान भी उल्लेखनीय रहा है। ऋग्वेद के अनुसार पुरोहित का कार्य है युद्ध में जाने वाले राजा के लिये स्वस्त्ययन करके उसके हाथ में शस्त्र प्रदान करना।<sup>68</sup> पुरोहित, राजा एवं राष्ट्र के लिये अत्यन्त महत्वपूर्ण व्यक्ति होता है क्योंकि उसकी सहायता से ही राजा, प्रजा में सम्मान प्राप्त करता है, राज्य धन-धान्य से सम्पन्न हो जाता है तथा भूमि उपजाऊ हो जाती है।<sup>69</sup> पुरोहित की योग्यताओं का उल्लेख करते हुए महाभारत में कहा गया है कि विद्वान् राजा को सत्कर्मों की प्रेरणा देने वाला, असत्कर्मों से रोकने वाला, कुलीन, उत्तम बुद्धि से युक्त, विनम्र, वेदज्ञ, धर्मात्मा, कर्तव्यों का बोध कराने वाला एवं प्रजापालन में उसकी सहायता करने वाला व्यक्ति ही राजपुरोहित के पद पर आसीन होने योग्य है।<sup>70</sup> इसी प्रकार आचार्य शुक्र की सम्मति में मंत्रों के अनुष्ठान से कार्य सिद्ध करने वाला, वेद त्रयी को जानने वाला, लोभ और मोह से रहित, छः वेदांगों को जानने वाला, धर्मार्थ को जानने वाला, अपने प्रभाव से राजा को भी धर्म तथा नीति में लगाने वाला शस्त्रास्त्रविद्या एवं व्यूह रचना को जानने वाला व्यक्ति पुरोहित होने के योग्य है, उसमें शाप तथा वर देने की क्षमता होनी चाहिए, उसे राजा को कुमार्ग से बचाना चाहिए।<sup>71</sup> आचार्य कौटिल्य के मतानुसार श्रेष्ठकुलोत्पन्न, शील सम्पन्न, षडंग सहित चारों वेदों में कुशल, शकून शास्त्र तथा दण्डनीति में पारंगत और अथर्ववेद के उपायों से दैवी तथा मानुषी विपत्तियों को दूर करने में समर्थ व्यक्ति ही राजा का पुरोहित बनने के योग्य होता है।<sup>72</sup>

किरातार्जुनीय के अन्तर्गत एतद् विषयक अवधारणाओं पर यदि दृष्टिपात किया जाए तो कहा जा सकता है कि राजा की सहायता के लिये राजपुरोहित के पद की परम्परा भारवि के काल तक विद्यमान थी। पुरोहित के व्यक्तिगत गुणों एवं वांछनीय योग्यताओं के विषय में यद्यपि प्रत्यक्ष उल्लेखों का अभाव है परन्तु किरात के अनुशीलन से ऐसा प्रतीत होता है कि तत्कालीन राज्य मन्त्रिमण्डल में राजपुरोहित के पद का अस्तित्व था जिसकी आज्ञा पाकर राजा

राज्य संचालन का भार युवराज पर छोड़कर श्रद्धा भाव से यज्ञादि धार्मिक अनुष्ठानों के सम्पादन में संलग्न रहता था।<sup>73</sup>

## 3. गुप्तचर

प्राचीन समस्त राजनीति के जानकारों ने गुप्तचर के पद एवं उसके दुष्कर कार्यों के महत्त्व को एक मत से स्वीकार किया है। गुप्तचर ही वह कड़ी होती है जिसकी सहायता से राजा स्वदेश-परदेश में होने वाले समस्त क्रिया कलापों से अवगत रहता है। ऋग्वेद के अनुसार राज्य व्यवस्था के लिये गुप्तचरों का होना आवश्यक है।<sup>74</sup> इनका कर्तव्य है कि प्रजा जनों, कर्मचारियों तथा राज्य में आने वाले बाह्य व्यक्तियों की चेष्टाओं को जानने के लिये राष्ट्र में भ्रमण करें।<sup>75</sup> महाभारत में निर्देश दिया गया है कि सुपरीक्षित, मूर्ख, बधिर एवम् अन्धे का रूप धारण करने में कुशल, भूख-प्यास, परिश्रम आदि में समर्थ व्यक्तियों को गुप्तचर का पद देना चाहिए। मन्त्री, मित्र, पुत्रों की गतिविधियों को देखने के लिये इनकी नियुक्ति इस प्रकार करनी चाहिए कि ये एक दूसरे के विषय में भी न जान सकें। राजा को अपने गुप्तचरों से विविध स्थलों पर आने वाले शत्रु गुप्तचरों की जानकारी प्राप्त करनी चाहिए।<sup>76</sup> आचार्य कौटिल्य की सम्मति में राजा को कापटिक, उदास्थित, गृहपति, वैदेहक, तापस आदि बहुत से गुप्तचरों की नियुक्ति करनी चाहिए। इन गुप्तचरों का कार्य है राजकीय कर्मचारियों के कार्य कलापों पर दृष्टि रखना। इन गुप्तचरों को अपने राष्ट्र में ही नहीं अपितु दूसरे राष्ट्रों में भी दैनिक उपयोग की सभी वस्तुओं, वाहनों, व्यक्तियों एवं सेवकों पर दृष्टि रखनी चाहिए। अपने स्वामी का कार्य और भी अच्छी तरह करने के लिये उभय वेतन भोगी बन कर शत्रु से भी वेतन लेना चाहिए। शत्रु के बहकावे में नहीं आना चाहिए और गुप्तचरों को अपने राष्ट्र तथा शत्रु राष्ट्र के प्रजा जनों का राजा के प्रति भक्तिभाव या वैमनस्य को जानने का प्रयत्न करना चाहिए।<sup>77</sup> इसी प्रकार आचार्य कामन्दक का गुप्तचर विषयक वृत्तान्त भी महत्वपूर्ण एवं ध्यातव्य है। उनके विचारों में तर्क और इंगित को जानना, स्मृति युक्त होना, पराक्रम सम्पन्न होना, कष्ट और परिश्रम को सहना तथा चतुराई आदि गुप्तचरों के आवश्यक गुण हैं। गुप्तचरों को तपस्वी, ब्रह्मचारी, धूर्त, व्यापारी तथा शिल्पी आदि का वेश बनाकर घूमते हुए समाचार जानकर प्रतिदिन राजा के पास पहुँचना चाहिए।<sup>78</sup>

अकेला राजा अपने राज्य या परराज्यों की स्थिति को नहीं देख सकता। वह गुप्तचरों द्वारा ही अपने अथवा दूसरे राज्य की स्थिति और कार्याकार्य की पूर्ण और वास्तविक जानकारी रखता है। इसलिये जिस राजा का गुप्तचर विभाग जितना सुदृढ़ और सक्रिय होता है उसका राज्य उतना ही निष्कण्टक समझा जाता है। जिसका यह विभाग असंगठित, निष्क्रिय और मिथ्याचारी होता है उस राज्य का पतन निश्चित होता है। किरातार्जुनीय में भी राजा को "चारक्षाक्षुष"<sup>79</sup> की संज्ञा देकर गुप्तचर के महत्त्व को प्रतिपादित किया गया है। किरात के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि तत्कालीन गुप्तचर व्यवस्था पर्याप्त सुदृढ़ एवं सकुशल थी। अपने राज्य के साथ-साथ शत्रु राज्यों में भी गुप्तचर नियुक्त किये जाते थे। भारवि युगीन गुप्तचर बड़ी दक्षता से ब्रह्मचारी के वेश में स्वच्छन्दता पूर्वक शत्रु राज्य में विचरण करते हुए शत्रु विषयक समस्त वांछनीय सूचनाओं का सफलतापूर्वक आकलन करता था। भारवि वर्णित गुप्तचर के कृत्यों एवम् चेष्टाओं के आधार पर सहज अनुमान लगाया जा सकता है कि उन दिनों उत्कृष्ट वाक्-कौशल, स्वामी भक्ति, राजनीति पटुत्व एवम् सत्यवादिता जैसे गुण गुप्तचर के लिये अनिवार्य थे। तत्कालीन गुप्तचर शत्रु-उच्छेद में संलग्न अपने स्वामी के साथ एकाकार होकर शत्रुविषयक जो भी सूचनाएं संकलित करता था उन्हें अपने राजा के समक्ष अभिव्यक्त करते हुए उसकी वाणी में कभी भी अनिश्चयात्मकता एवं सन्देह का लेश मात्र भी नहीं रहता था। उसके शब्द सुन्दर होते थे तथा अर्थ निश्चित।<sup>80</sup> निपुण एवं सकुशल होने के साथ-साथ उस समय गुप्तचर विनम्र एवं अखण्ड स्वामी भक्ति से ओत-प्रोत होता था। उसके लिये

अपने राजा का हित सर्वोपरि था। राजा के लिये अपनी अनुकूलता को वह राज्य का प्रमुखाधार मानता था।<sup>81</sup> वह स्वयं को मन्द बुद्धि मानते हुए भी विपक्षियों की गूढ़ नीति का विवरण अपने स्वामी को विस्तारपूर्वक समझाया करता था।<sup>82</sup> अपने राजा के सम्मुख गुप्तचर के द्वारा मिथ्याप्रिय भाषण करना प्रवचना माना जाता था तथा अप्रिय होने पर भी सत्य बात को निस्संकोच होकर प्रकट करना प्रशंसनीय था।<sup>83</sup> इसी प्रकार शत्रु राज्य में प्रजा और राजा के पारस्परिक सम्बन्ध, राजा की कार्य शैली, विदेशी राजाओं से उसके सम्बन्ध, सामादि उपायों की प्रयोग क्षमता तथा सैन्य व्यवस्था जैसे क्षेत्र उसके प्रमुख ज्ञेय विषय थे।<sup>84</sup> उक्त विषयों का गहनता से परीक्षण करके तत्कालीन गुप्तचर अपने स्वामी के समक्ष अपने राजनैतिक पटुत्व को मूर्त रूप प्रदान करता था। राजकीय कोश से गुप्तचरों को उनके कार्य के लिये समुचित पारितोषिक दिया जाता था।<sup>85</sup>

अन्त में सारस्वरूप कहा जा सकता है कि भारवि कालीन गुप्तचर अपने राजा से अनन्य रूप से जुड़ा रहकर उसके हित-अहित एवम् लाभ-हानि का पूर्ण ध्यान रखते हुए ईमानदारी तथा निष्ठा से कार्य करता था जिसके आधार पर राजा सही नीति निर्धारित करने में समर्थ हो पाता था।

#### 4. दूत

एक राजा दूसरे राजा के प्रति सन्धि विग्रहादि विषयक सन्देश जिस व्यक्ति के माध्यम से भेजता है वह दूत कहलाता है। प्रचीन काल से ही दौत्य क्रिया में नियुक्त व्यक्ति को अत्यन्त महत्त्वपूर्ण माना गया है तथा सभी प्रमुख राजनीतिज्ञों ने इस पद पर योग्य व्यक्ति को नियुक्त करने की सिफारिश की है। ऋग्वेद के अनुसार दूत देश का सम्मानित प्रतिनिधि होता है।<sup>86</sup> इसमें तेजस्विता, वाक्कुशलता, सत्यप्रियता, दक्षता, अहिंसा-प्रियता, शत्रुओं को संतप्त करने की योग्यता तथा वीरता आदि गुण होने चाहिए।<sup>87</sup> यह अवध्य तथा स्वच्छन्द रीति से भ्रमण करने वाला होना चाहिए।<sup>88</sup> आचार्य मनु के विचारों में राज्य के सन्धि विग्रह दूत के अधीन होते हैं। अतः जो व्यक्ति शास्त्र, इंगित, आकृति और चेष्टा को समझने वाला, शुद्ध हृदय, चतुर, कुलीन, स्मरण शक्ति युक्त, देशकालज्ञ, षडगुणज्ञ, किसी भी प्रकार शत्रुओं के वश में न होने वाला, अवसरचित कार्य करने वाला तथा मंत्रियों और अन्तःपुर की रक्षा करने में समर्थ हो उसे ही दूत बनाना चाहिए क्योंकि ऐसा ही व्यक्ति शत्रु की इच्छा जान सकता है।<sup>89</sup> महाभारत के अन्तर्गत दूत विषयक जो उल्लेख मिलता है उसके अनुसार दूत राजा का अवध्य कर्मचारी होता है और इसके आवश्यक गुण हैं-कुलीनता, शिष्टाचार, चतुरता, स्वामी-निष्ठा, प्रियभाषण, सन्देश को यथार्थ रूप से कहना तथा स्मृति आदि।<sup>90</sup> आचार्य शुक्र, कौटिल्य एवम् कामन्दक प्रभृति नीतिकारों के ग्रन्थों में भी दूतविषयक उल्लेखों का प्राचुर्य दृष्टिगत होता है। आचार्य शुक्र की सम्मति में इंगित, आकृति एवं चेष्टा को समझने में समर्थ, अच्छी स्मरण शक्ति वाला, देश काल के अनुसार कार्य करने वाला, सन्धि विग्रह आदि षडगुणों के विषय में मन्त्रणा देने वाला निर्भीक व्यक्ति दूत बनने के योग्य होता है।<sup>91</sup> कौटिल्य के विचारों में दूत के तीन प्रकार हैं-क. निस्पृष्टार्थ अर्थात् स्वाभाविक रूप से दौत्य कार्य करने वाला। ख. मितार्थ अथवा किसी प्रयोजन विशेष को सिद्ध करने वाला। ग. शासन हर या राजा की आज्ञा को ले जाने वाला जो कि पूर्वोक्त दो दूतों की अपेक्षा अल्प सामर्थ्य वाला होता है। दूत का कर्तव्य है कि वह यात्रा योग्य सभी सामग्री की व्यवस्था करके सन्देश के उत्तर-प्रत्युत्तर पर विचार करे, अपने स्वामी का सन्देश ठीक-ठीक कहे, शत्रु राजा के आकार और संकेतों से उसके मनो भावों को जानें, स्त्री तथा मद्यपान का त्याग कर दे और एकाकी शयन करें। इसके अतिरिक्त शत्रु के यहाँ भेद नीति का प्रयोग करना तथा मित्रों में फूट डालना आदि भी उसके कर्तव्य हैं।<sup>92</sup> आचार्य कामन्दक भी लगभग यही विचार व्यक्त करते हैं।<sup>93</sup> किरात के अन्तर्गत उपलब्ध होने वाले दूत विषयक उल्लेख पर यदि दृष्टि

डालें तो कह सकते हैं कि उन दिनों दूत के रूप में नियुक्त किये जाने वाले व्यक्ति में निर्भीकता, वाक्कुशलता एवं बौद्धिक सम्पन्नता जैसे गुण विद्यमान थे। तत्कालीन दूत आकृति को देख कर ही व्यक्ति की यथार्थ पहचान करने में कुशल थे तथा बड़ी विनम्रता से अपने स्वामी का सन्देश उसके विपक्षी के सम्मुख प्रस्तुत करते थे।<sup>94</sup> सन्धि विग्रहादि विषयों में प्रवृत्त होते हुए वह दो विरोधियों में मित्रता स्थापित करने के लिये अकाट्य तर्क प्रस्तुत करते थे।<sup>95</sup> उदाहरण के लिये किराताधिपति दूत द्वारा अर्जुन के समक्ष दिये गये वक्तव्य को लिया जा सकता है जो कि राजनीति शास्त्रों में चित्रित दौत्य कार्य का व्यवहारिक निदर्शन प्रस्तुत करता है। उक्त दूत एक बाण के स्वामित्व के विषय में अर्जुन और किरात वेशधारी शिव के मध्य उपस्थित हुए विवाद को शान्त करने के लिये मध्यस्थता करता है। अर्जुन के सम्मुख उपस्थित होकर सविनय नमस्कार करके व्यवहारिक नैपुण्य को प्रकट करता है।<sup>96</sup> वह अर्जुन की आकृति को देख कर ही उसके उच्च कुल में उत्पन्न होने का अनुमान कर लेता है।<sup>97</sup> प्रासंगिक बात करने से पहले वह बड़ी कुशलता से अर्जुन को अनुकूल बनाने के उद्देश्य से उसे मुनिवेश में वर्तमान होते हुए भी अत्यन्त प्रभावशाली एवम् तेजयुक्त बताकर अपनी महत्ता से बड़े-बड़े राजाओं को तुच्छ बनाने वाला कहकर उसकी प्रशंसा करता है।<sup>98</sup> अनन्तर अर्जुन द्वारा गृहीत बाण को अपने स्वामी का बाण बताकर उसे अपहृत करना न्याय पथ का उल्लंघन बताते हुए अर्जुन को उसके विरुद्ध प्रेरित करता है।<sup>99</sup> किरात पति को अस्त्र विद्या विशारद बताते हुए तथा अनेक प्रकार से उनके गुणों का बखान करते हुए अर्जुन को भयभीत करने का प्रयास करता है साथ ही उसे अपने स्वामी से मैत्री स्थापित करने की प्रेरणा देता है।<sup>100</sup> किरात दूत शस्त्रधारी अर्जुन को देख कर यह अनायास ही समझ जाता है कि उसकी तपस्या मोक्ष प्राप्ति के लिये न होकर शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने के लिये है।<sup>101</sup> अतः वह विजयाभिलाषियों के लिये धन सम्पत्तियों की अपेक्षा मित्र लाभ को अधिक लाभकारी बताता है।<sup>102</sup> अर्जुन ने किरात सन्देशवाहक के गुणों की प्रशंसा करते हुए कहा था कि महान् कार्य का सम्पादक एवं अपने स्वामी का विश्वसनीय किरात निर्भीकता, शुद्धता एवं स्वच्छता आदि गुणों से युक्त तथा श्रेष्ठ वक्ताओं में अग्रगण्य था।<sup>103</sup> उक्त कथन अर्जुन सदृश नायक की विनयशीलता का प्रमाण तो है ही साथ में एक कुशल सन्देशवाहक के गुणों को भी अभिव्यक्त करता है।

#### 5. सेना

सेना राजा का बल कहलाती है, उसमें यदि दुर्बल, कायर, स्वार्थी और अनुशासनहीन सैनिक होते हैं तो राज्य एक भी दिन नहीं टिक सकता। यजुर्वेद के अनुसार राजा और राज्य के लिये सेना अपरिहार्य है।<sup>104</sup> इसीलिये सेना में श्रेष्ठ वीरों की नियुक्ति करनी चाहिए।<sup>105</sup> किरात में उपलब्ध उल्लेखों से यह संकेतित होता है कि भारवि युगीन सैन्य व्यवस्था अत्यन्त उत्कृष्ट थी। सेना में चुन-चुन कर ऐसे सैनिकों को रखा जाता था जो अत्यन्त बलशाली, धन की अपेक्षा कीर्ति को अधिक महत्त्व देने वाले, बल के घमण्ड में अकीर्तिकर कार्य न करने वाले तथा राजा के हित के सामने अपने हित को तुच्छ समझने वाले थे। वे कभी भी किसी प्रकार के षडयन्त्र में संलिप्त नहीं होते थे और जो भी आदेश होता था उसे सहर्ष स्वीकार करते थे तथा उस पर किसी प्रकार की आपत्ति करना या उसमें व्यवधान डालना उन्हें कभी अभीष्ट नहीं था।<sup>106</sup> सफल सांग्रामिक कार्यवाही के लिये सेना की अखण्डता अत्यन्त महत्त्वपूर्ण मानी जाती थी। यह बात भारवि के द्वारा अर्जुन की एकाग्रता के प्रसंग में चित्रित की गई है। उस स्थल पर संकेत मिलता है कि सेना में यदि अन्तरंग विरोध हो तो राजा कदापि विजयी नहीं हो सकता।<sup>107</sup>

निस्सन्देह भारवि कालीन राज्य प्रशासन राजतन्त्र प्रणाली का होते हुए भी राजा तथा प्रजा दोनों के लिये हितकारी था। राजा स्वयं सुयोग्य होता था तथा प्रशासन में भी सभी कुशल एवं योग्य

प्रशासकों को स्थान प्रदान किये जाते थे। उनकी सहायता से प्रशासनिक कार्यों का संचालन प्रजाहितार्थ किया जाता था। सैन्य व्यवस्था भी बहुत सुदृढ़ थी।

### घ. आर्थिक आधार

किसी भी सशक्त एवं सुदृढ़ राष्ट्र की अखण्डता के लिये जहाँ एक ओर कुशल एवम् सुनियोजित राजनैतिक व्यवस्था आवश्यक है वहीं दूसरी ओर आर्थिक दृष्टि से उसका सम्पन्न होना भी अनिवार्य होता है। किरातार्जुनीय के अनुशीलन से भारवि कालीन आर्थिक परिस्थितियों का यद्यपि कोई प्रत्यक्ष एवं विस्तृत विवरण उपलब्ध नहीं होता है तथापि एतद्विषयक कुछेक प्रसंगों में जो आंशिक उल्लेख मिलते हैं उनसे ऐसा आभास मिलता है कि देश आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न था तथा प्रशासन पूरी सजगता से लोगों को धन-धान्य सम्पन्न बनाने में कृतकार्य रहता था। प्राचीन काल से ही कृषि, व्यापार, गोपालन और नाना प्रकार की शिल्प कलाएं अर्थ प्राप्ति के साधन रहे हैं। भारवि के काल में कृषि कार्य को ही प्रमुखता दी जाती थी और अधिकतर जनसंख्या अपने जीवन यापन के लिये कृषि पर ही आश्रित थी। कृषकों के लिये मिलने वाली सुविधाओं का जहाँ तक प्रश्न है ऐसा प्रतीत होता है कि उन्हें कृषि कार्य के लिये केवल वर्षा के ही पानी पर निर्भर नहीं रहना पड़ता था। प्रशासन की ओर से सिंचाई की व्यापक व्यवस्था करवायी गई थी जिसका उपयोग करके कृषक वर्ग सुगमतापूर्वक फसलें उगाता था तथा धन-धान्य सम्पन्न होकर आनन्दमय जीवन व्यतीत करने में समर्थ हो पाता था।<sup>108</sup> कृषि में उगाई जाने वाली फसलों में किरात के अन्तर्गत बहुधा धान का ही उल्लेख मिलता है।<sup>109</sup> कृषकों के अतिरिक्त किरात में एक ऐसे वर्ग का भी उल्लेख आता है जो गोपालन से ही अपनी आजीविका चलाता था।<sup>110</sup> इसी प्रकार पराजित राजाओं से उपहार स्वरूप मिलने वाले रथों, अश्वों, हाथियों एवं अन्य अपरिमित सम्पत्तियों से भी तत्कालीन राजा की अर्थ सम्पत्ति दिन प्रतिदिन वृद्धि को प्राप्त हाती थी। अधीनस्थ भूपतियों द्वारा उपहार के रूप में लाए गये हाथियों का परिमाण इतना अधिक होता था कि उनके मदजल से आँगन में फिसलन हो जाती थी।<sup>111</sup> एक दो प्रसंगों में रथ का उल्लेख होने से ऐसा माना जा सकता है कि भारवि के काल में रथकारों तथा अन्य शिल्पियों का अस्तित्व भी रहा होगा।<sup>112</sup> इसी प्रकार सुवर्ण हार<sup>113</sup>, आभूषण<sup>114</sup> जैसे शब्दों से तत्कालीन समाज में सुवर्णकारों के अस्तित्व से भी इन्कार नहीं किया जा सकता। उपर्युक्त उल्लेखों के अतिरिक्त किसी भी अन्य व्यवसाय एवं व्यावसायिकों सम्बन्धी वर्णनों का किरात में अभाव है।

### ङ. कानून और व्यवस्था

किसी भी राष्ट्र की निर्बाध उन्नति एवं विकास के लिये वहाँ की कानून एवं व्यवस्था की स्थिति का सुदृढ़ एवं व्यवस्थित होना अनिवार्य होता है। समाज में स्वार्थपरता के परिणामस्वरूप पनपने वाली अराजकता एवम् भ्रष्टचार जैसी दुष्प्रवृत्तियों से त्राण पाने के लिये और समाज में सद्व्यवस्था एवं साम्यावस्था स्थापित करने के लिये कानून बनाना तथा कानून के संरक्षण हेतु समुचित दण्ड व्यवस्था का होना भी परमावश्यक होता है। यद्यपि किरात में एतद्विषयक विस्तृत उल्लेखों का अभाव है तथापि तदन्तर्गत जो आंशिक उल्लेख प्राप्त होते हैं उनके आधार पर कहा जा सकता है कि अपराधियों और समाज विरोधी तत्त्वों से निपटने के लिये प्रशासन के द्वारा जिस दण्ड व्यवस्था का विधान किया गया था वह निश्चय ही प्रशंसनीय थी। अराजकता में संलिप्त होने वालों को शत्रु या पुत्र के भेदभाव बिना समान रूप से दण्डित किया जाता था। अपराधी होने पर किसी को भी अपराध मुक्त नहीं किया जाता था।<sup>115</sup> किरात के अन्तर्गत उपलब्ध होने वाले 'प्रशान्तबाधम्'<sup>116</sup> विशेषण से भी इस बात की पुष्टि होती है कि सम्पूर्ण राज्य पूर्णतया निरुपद्रव एवं शान्तिमय था। समस्त उपद्रवों को शान्त करके राजा श्रद्धा भाव से प्रजा पालन में दत्त चित्त रहता था और समस्त प्रजा शान्तिपूर्वक आनन्दमय जीवन व्यतीत करती थी।

### च. राजनैतिक दृष्टि से पुरुष तथा नारी का समाज में स्थान

इस विषय में भारवि के मन्तव्य पर यदि दृष्टि डाली जाए तो कहा जा सकता है कि तत्कालीन राजनीति के प्रमुख कर्णधार यद्यपि पुरुष ही थे तथापि ऐसा प्रतीत होता है कि नारी वर्ग को भी उपेक्षित नहीं रखा गया था। राजनीति विषयक महत्त्वपूर्ण एवं गम्भीर चर्चाओं में उन्हें भी सम्मिलित किया जाता था तथा सभी विषयों पर अपने विचार व्यक्त करने का उन्हें पूर्ण अधिकार था। यद्यपि राजनैतिक क्षेत्र में नारी के हस्तक्षेप को नारी सुलभ मर्यादा के विपरीत माना जाता था।<sup>117</sup> फिर भी उसके विचारों को गम्भीरता से सुना जाता था। उदाहरणार्थ कुशल राजनीतिज्ञा के रूप में चित्रित द्रौपदी के कथनों को लिया जा सकता है जिसमें वह अनेक तर्कयुक्त उक्तियों से अपने पति युधिष्ठिर को युद्ध के लिये उत्तेजित करती है। अपमान की ज्वाला में जलती हुई द्रौपदी युधिष्ठिर की सत्य परायण शम प्रधान नीतियों का विरोध करती है और अनेक प्रकार की व्यंग्योक्तियों तथा आक्रोश परिपूर्ण उक्तियों से अपने पति के मानस में युयुत्सा उत्पन्न करने का प्रयास करती है। वह पाण्डवों की दीन-हीन अवस्था के वर्णन को युधिष्ठिर को उत्तेजित करने के लिये एक साधन के रूप में प्रयोग में लाती है। वह उन्हें क्षत्रियोचित तथा राजानुकूल आचरण करने का सुझाव देती है और कहती है कि क्षमावृत्ति मुनियों को ही शोभा देती है राजाओं को नहीं। द्रौपदी की समस्त उक्तियों को युधिष्ठिर बड़ी शान्ति से सुनते हैं।<sup>118</sup> इतना होने पर भी राजनैतिक क्षेत्र में किसी भी महत्त्वपूर्ण कार्यवाही में अन्तिम निर्णय पुरुषों का ही होता था।

### निष्कर्ष

अन्त में निष्कर्ष स्वरूप कहा जा सकता है कि भारवि कालीन राजनैतिक संरचना सुदृढ़ एवं व्यवस्थित थी। राजा, प्रजा, मन्त्री तथा अन्य अधिकारियों के पारस्परिक सम्बन्ध सौहार्दपूर्ण थे। भूपति वर्ग परिस्थितियों के अनुरूप नीतियाँ निर्धारित करने में सक्षम थे। प्रशासन के संचालन के लिये शास्त्र सम्मत विचारधारा को ही आदर्श माना जाता था तथा प्रजा को कभी भी चोरों, दस्युओं एवं विध्वंसकारी शक्तियों से भयभीत नहीं होना पड़ता था क्योंकि शासन सर्वथा निरुपद्रव था। इसके साथ ही साथ लोगों की आर्थिक स्थिति भी सुखद एवम् सन्तोषजनक थी। वर्तमान सन्दर्भ में भी भारवि वर्णित राजनैतिक आदर्श उपयोगी एवं महत्त्वपूर्ण सिद्ध हो सकते हैं। आधुनिक राजनेताओं में स्वार्थ एवं येन केनापि प्रकारेण सत्ता हथियाने की दुष्प्रवृत्ति उत्तरोत्तर बढ़ती हुई सी जान पड़ती है। ऐसा प्रतीत होता है कि नैतिक मूल्य एवम् देश हित उनकी दृष्टि में गौण होते जा रहे हैं। किसी एक दल के नेता के सत्तासीन होने पर अन्य दलीय नेता उसे अपदस्थ करने की कुत्सित योजनाएं बनाने में जुट जाते हैं जिससे देश में अस्थिरता एवं अनिश्चय की स्थिति बनी रहती है। यदि आज के नेता भारवि वर्णित दुर्योधन के समान केवल प्रजा कल्याण एवं देश को स्थिरता तथा गतिशीलता प्रदान करने का प्रयास करे तथा युधिष्ठिर के समान संकीर्णता के पंक से मुक्त होकर अपने राजनैतिक चिन्तन को विशुद्ध बनाए तो देश का बहुत बड़ा कल्याण हो सकता है।

### सन्दर्भ सूची

1. कि. 1.7
2. वही 2.4, 9-11
3. वही 1.13
4. वही 1.17
5. वही 1.19
6. वही 1.20
7. वही 1.1
8. वही 1.21
9. वही 1.23
10. वही 1.3
11. वही 1.1

12. वही 1.45
13. वही 2.23
14. वही 2.16
15. वही 2.30
16. वही 2.31
17. वही 2.13-15
18. वही 2.32
19. वही 1.33
20. वही 2.35
21. वही 2.36
22. वही 2.37
23. वही 2.38
24. वही 2.8-11
25. वही 2.46
26. वही 2.52
27. वही 2.44-45,47
28. वही 3.17
29. वही 3.23
30. सोमेश्वरकृत मानसोल्लासः एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ.46
31. ऋ. 1.12.2
32. यजु. 7.30
33. वही 9.10
34. मनु. 7.27, 8.304-307, 9.306
35. शु.नी.सा. 2.64-87
36. म.भा.शां.प. अ.67-68
37. कि. 1.7
38. वही 1.10
39. वही 1.17
40. वही 1.14
41. वही 1.13
42. वही 1.12
43. वही 1.14
44. वही 1.9
45. वही 1.20
46. वही 1.11
47. वही 1.22
48. वही 2.30-32
49. वही 2.33
50. वही 2.38
51. वही 2.34
52. मनु. 7.55
53. शु.नी.सा. 2.1
54. कौ.अ.शा. 13.5.3
55. ऋ. 1.8.6
56. वही 1.17.3-4
57. वही 1.1.17
58. मनु. 7.54-62
59. म.भा.शां.प. 56.35
60. वही 75.30
61. वही 80.21-27
62. शु.नी.सा. 2.85, 96-97
63. कौ.अ.शा. 1.अ.7
64. कि. 13.39
65. वही 1.5
66. वही 3.14
67. वही 3.17
68. ऋ. 1.63.2
69. वही 4.50.7-9, 7.33.6
70. म.भा.शां.प. अ.72-अ.74
71. शु.नी.सा. 2.78-83
72. कौ.अ.शा. 1.अ.8-अ.9
73. कि. 1.22
74. ऋ. 1.23.2-3
75. वही 1.51.1
76. म.भा.शां.प. 69.8-13
77. कौ.अ.शा. 1.अ.10-अ.13
78. का.नी.सा. 12.25-31, 34-36, 47-48
79. कि. 1.4
80. वही 1.3
81. वही 1.5
82. वही 1.6
83. वही 1.4,20
84. वही 1.1, 7.14
85. वही 1.14,26
86. ऋ. 1.161.4
87. वही 1.12.1,4,10, 7.2.3, 7.3.1, 2.11.2
88. वही 4.1.2
89. मनु. 7.63-68
90. म.भा.शां.प. 85.27-28
91. शु.नी.सा. 2.87-88
92. कौ.अ.शा. 1.15
93. का.नी.सा. 12.2-14
94. वही 13.26-37
95. कि. 13.36-69
96. वही 13.36
97. वही 13.37
98. वही 13.38-41
99. वही 13.42
100. वही 13.67, 47-48, 54-58
101. वही 13.54
102. वही 13.52
103. वही 14.6
104. यजु. 6.3
105. वही 7.29
106. कि. 1.19
107. वही 10.37
108. वही 1.17
109. वही 4.1-2,4,7-9
110. वही 4.13
111. वही 1.16
112. वही 1.6, 4.18
113. वही 4.24
114. वही 4.19
115. वही 1.13
116. वही 1.18
117. वही 1.28
118. वही 1.27-46